印地语时文

第六册

孙卫国　编

中国人民解放军外国语学院
一九九四年十一月

विषयसूची

५ -- १७३

६ -- २०४

७ -- २५०

८ -- २९३

ये कहां आ गए हम

जहां तक भारतीय बाजारों के अतीत का प्रश्न है, तो न केवल हमारे यहां बाजारों का एक समृद्ध अतीत है, बल्कि वर्तमान में भी हम एक देश के रूप में दुनिया के सबसे बड़े उपभोक्ता बाजार हैं। भारत में इस समय बीस करोड़ से ज्यादा संपन्न मध्यवर्गीय उपभोक्ता हैं, जो कि संयुक्त यूरोप के ३४ करोड़ उपभोक्ताओं के बाद सबसे ज्यादा हैं। हालांकि संयुक्त राज्य अमेरिका में भारत से ज्यादा उपभोक्ता हैं और वे उपभोग भी हमारे उपभोक्ताओं से ज्यादा करते हैं। मगर दुनिया के कई अर्थशास्त्रियों और अर्थ संगठनों का मानना है कि अमेरिकी उपभोक्ता बहुत खोखले उपभोक्ता हैं। उनकी क्रय शक्ति कृत्रिम है। उधार की अय्याशी करते है, जबकि भारतीय या यूरोपीय उपभोक्ता उद्यमी उपभोक्ता हैं। उनकी क्रय शक्ति कृत्रिम नहीं है।

भारत में समृद्ध बाजार व्यवस्था (राजनैतिक नहीं) के अवशेष हड़प्पा की खुदाई में हासिल हुए हैं। खुदाई के दौरान प्राप्त विभिन्न प्रकार के सिक्के इस बात के प्रमाण हैं कि भारत की इस आदिम नागर सभ्यता में विनिमय होता था।

हड़प्पा की सभ्यता में कई वस्तुएं ऐसी भी मिली हैं, जो उसकी समकालीन मेसोपोटामिया और बेबीलोनिया सभ्यताओं में भी पाई गई हैं । इससे पता चलता है कि भारत की इस नदी घाटी सभ्यता में व्यापारिक (वस्तु विनिमय) गतिविधियां समुन्नत थीं । काव्यकालीन (महाभारत) भारत में भी समृद्ध बाजारों का उल्लेख आता है । कृष्ण जब मथुरा आते हैं तो उन्हें मामा के वैभव की ताकत का पता बाजार से ही चलता है । हस्तिनापुर के समृद्ध बाजारों का अवलोकन हम बी आर. चोपड़ा की महाभारत में ही कर चुके हैं और ईसा पूर्व ३२१ के मौर्य काल (चंद्रगुप्त मौर्य से लेकर गुप्त साम्राज्य के स्वर्ण युग के पुनर्जीवन काल तक ३८०-४१२ ई) का समृद्ध बाजार अतीतइतिहास के पन्नों में कैद है । भारत के अतीत कालीन बाजार कितने समृद्ध थे उसका पता चीनी यात्री फाह्यान, विश्व व्यापारी मार्को पोलो तथा इतिहासकार इब्नबतूताके उल्लेखों से चलता है । इब्नबतूता, जो कि भारत में तुगलक वंश के स्थापित होने के बाद आया था, ने यहां के लुटे-पिटे बाजारों को देखकर कहा था " अतीत में भारत सोने की चिड़िया नहीं, बल्कि सोने की खान रहा होगा ।" फाह्यान ने भी कन्नौज के समृद्ध

बाजार को देखने के बाद भारत के लोगों को समृद्ध और विनिमय में रुचि रखने वाला लिखा था।

लेकिन बाजारों के स समृद्ध इतिहास के साथ एक कटु सत्य यह भी जुड़ा है कि उपनिवेश युग से पूर्व बाजारों में आम आदमी की भागीदारी बहुत कम थी, तब तक बाजार रोजमर्रा के जीवन से कम, विशेष जीवन से अधिक जुड़े थे। मगर भारत में अंग्रेजों के आगमन और इंग्लैंड की हथकरघा क्रांति के बाद बाजारों में जन भागीदारी अनिवार्य हो गयी। औद्योगिक विकास ने समाज का पारम्परिक सामंती ढांचा तोड़ा और इसकी जगह पूंजीवाद का जो ढांचा खड़ा हुआ, असल .. में वह बाजार का सत्तात्मक विस्तार था। दर असल समाज का पारम्परिक सामंती ढांचा विकास के रास्ते में अनेक बाधाएं खड़ी कर रहा था। मसलन सामंती ढांचे की ऊंच-नीच की भावना सामूहिक कार्य संस्कृति में बाधक थी। औद्योगिक क्रांति ने इस तरह के सामाजिक मूल्यों को तोड़कर (जो कि विकास में बाधक थे) नये विकासमूलक सामाजिक मूल्य तैयार किये। राजाओं, चर्चों के खिलाफ जन-आंदोलन हुए और समाज का नया पूंजीवादी ढांचा तैयार हुआ, जिसमें

此为试读,需要完整PDF请访问: www.ertongbook.com

आम आदमी पहले से कहीं ज्यादा स्वतंत्र था । पहले से ज्यादा उसके पास क्रय शक्ति थी, क्योंकि उसके श्रम का मात्रात्मक मूल्य पहले से ज्यादा बढ़ गया । सामाजिक बदलाव की इस प्रक्रिया ने बाजारों के स्वरूप और चरित्र में निर्णायक प्रभाव डाला । इंग्लैंड और उसके साथी व यूरोपीय देशों ने औद्योगिक क्रांति के बाद धड़ाधड़ सारी दुनिया में अपना उपनिवेश विस्तार शुरू किया । यह उपनिवेश विस्तार वास्तव में बाजार का विश्व विस्तार था । जिस देश ने जितना ज्यादा उपनिवेश विस्तार किया, वह उतना ही ज्यादा शक्ति संपन्न हो गया ।

मगर यह उपनिवेश विस्तार यूरोपीय देशों के बीच सहयोगात्मक भावना के साथ बहुत दिनों तक नहीं चल सका । छीना-झपटी कभी मित्रवत नहीं होती इसलिए उपनिवेश स्वामियों के आपसी हितों में टकराहट का होना अनिवार्य था । फ्रांस, जर्मनी और ब्रिटेन तीनों देशों में यह होड़ लगी थी कि कौन अपने बाजार को कितना विस्तार दे दे । इंग्लैंड के हाथ में एशिया के अधिकांश बड़े हिस्से थे, मसलन भारतीय

उपमहाद्वीप तथा मध्य पूर्व के कुछ हिस्से ।जबकि फ्रांस और जर्मनी के पास मध्य, पूर्व के कुछ हिस्सों के अलावा अफ्रीका और यूरोप का ही बाजार था । मुस्लिम विश्व में आटोमन साम्राज्य तथा सुदूरपूर्व में जापान का कब्जा था । जर्मन सैनिक शक्ति के रूप में ब्रिटेन और फ्रांस से ज्यादा मजबूत था । फिर उसके पास बिस्मार्क जैसा संगठनकर्ता था । साथ ही प्रशा की सैनिकवादी भावना, जो उसे नेपोलियन से विरासत में मिली थी । कहने का मतलब जर्मनी फ्रांस और इंगलैंड की अपेक्षा ताकतवर था । उसके पास आस्ट्रिया और हंगरी जैसे सैनिक शक्ति से सम्पन्न त्रिगुट मित्र-मंडल भी था । इसके साथ ही उसके पास बाजार इंगलैड की अपेक्षा बहुत कम था । जिससे वह अपने औद्योगिक उत्पादन को कम बेच पाता था। यह स्थिति वह बहुत दिनों तक बर्दाश्त नहीं कर सका और अंततः ये सारे अंतर्विरोध १९१४ में विश्व युद्ध के रूप में प्रकट हुए । एक अंग्रेज इतिहासकार ने प्रथम विश्व युद्ध के कारणों पर प्रकाश डालते हुए लिखा है कि सुरक्षित बाजार प्राप्त करने की दो ही विधियां थीं या

तो दूसरे देश को जाकर अपने अधिकार में लिया जाए अथवा उसके साथ इस प्रकार की संधियां की जाएं, जिससे वह पूर्ण रूप से अपना वंशवर्ती बन जाए। इन दोनों विधियों की व्यावहारिक परिणति ही युद्ध बनकर सामने आयी। दूसरा महायुद्ध बाजार के लिए और अधिक प्रतियोगिता का परिणाम था क्योंकि प्रथम विश्व युद्ध की सामाजिक परिणति ने जिस राष्ट्रवाद और आत्म-गौरव का रक्त संचार गुलाम समाजों में किया था, उसके चलते उपनिवेश बाजार असुरक्षित होने लगे। इस बीच एक और जबर्दस्त परिणति यह हुई कि पश्चिम में जो मार्क्सवाद सुगबुगा रहा था-प्रथम विश्व युद्ध खत्म होते-होते उसने अपना पहला सत्ता निरूपण सोवियत संघ में पा लिया।

चूंकि मार्क्सवाद बाजार के बिल्कुल विपरीत खड़ा वाद है। इसलिए पूंजीवाद जहां बाजार बाज़ार का स्वर्ग है, वहीं समाजवाद बाज़ार की ज़रूरत ही खारिज करता है। समाजवाद बाजार को शोषण का संवैधानिक तंत्र मानता है, इसलिए विश्व में दो तो तरह के विचार पक्षों के उदय के चलते गुलामी के खिलाफ चेतना व्यापक हुई। साम्राज्यवादी

देशों के ये बाजार आन्दोलन के शिकार होने लगे, जिसकी परिणति था दूसरा महायुद्ध, मगर इन दोनों महायुद्धों के बाद भी बाजार का विकास नहीं रुका ।

हां, दूसरे महायुद्ध के बाद बाजार यानि विश्व बाजार को उसके पुराने लबादे की जगह नया सगोलीकरण (ग्लौबलाइजेशन) का जामा पहनाया गया, क्योंकि द्वितीय विश्व युद्ध के बाद दुनिया के अधिकांश गुलाम देश आजाद हो चुके थे और उनको पुनः गुलाम बना लेना पारम्परिक सौम्राज्यवाद के वश में नहीं था । इसलिए द्वितीय विश्व युद्ध के बाद वैज्ञानिक साम्राज्यवाद का उदय हुआ । विश्व बाजार को नया रूप-आकार प्रदान किया गया । मुद्रा कोष, विश्व बैंक तथा गैट जैसे वित्तीय आर्थिक एवं व्यापारिक संगठनों-संस्थाओं का गठन हुआ । युद्धोत्तर विश्व बाजार को इन्हीं तीन वैश्विक अर्थ संगठनों ने नियंत्रित किया है ।

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद के पांच दशक इस तथ्य के सबूत हैं कि युद्ध पूर्व, जो सैन्य साम्राज्यवाद विश्व बाजार को नियंत्रित कर रहा था, युद्धोत्तर विश्व में वहीं भूमिका

बड़ी शिद्दत से इन तीनों संगठनों ने निभाई । युद्ध पूर्व भी दुनिया के व्यापार में मुट्ठी भर देशों का कब्जा था, आज भी उन्हीं मुट्ठी भर देशों का कब्जा है । अंतर सिर्फ इतना हुआ है कि पहले ये मुट्ठीभर देश किसी चीज का उत्पादन कर उसे विश्व भर में बेचते-फिरते ., आजकल ये देश यह भी नहीं कर रहे हैं बल्कि ये काम कर रही हैं, उन सभी की साझी दैत्याकार कम्पनियां या फिर निकी निर्यातित तकनीकी । पूंजी और तकनीक का साम्राज्यवादी देशों ने सेना और सत्ता की तरह उपयोग किया है । आज भी तीसरे विश्व के अधिकांश देश कच्चे माल का निर्यात करते हैं, जबकि विकसित देश निर्मित माल और तकनीक का आयात करते हैं । इस तरह यद्धोत्तर विश्व बाजार में परिणामगत कोई अंतर नहीं आया । जो अंतर आया है, वह उसके ढांचागत फैलाव व गतिविधियों में आया है ।

विश्व व्यापार एवं बाजार में पिछले दो दशकों में एक नया परिवर्तन आया है । यह परिवर्तन है सेवा बाजार (सर्विसिंग मार्केट) के अभ्युदय का । सेवा बाजार यद्धोत्तर

विश्व के सातवें दशक की परिघटना है । इसके विकास में दो कारण महत्वपूर्ण हैं । पहला खाड़ी देशों में पेट्रो डालर की बदौलत निर्माण में आई " बूम" तथा दूसरा कारण विश्व औद्योगिक परिदृश्य में जापान व चार अन्य एशियाई देशों का उदय, भारत और चीन द्वारा महत्वपूर्ण अधिसंरचनात्मक विकास तथा जर्मन का औद्योगिक महाशक्ति के रूप में पुनरोदय । जापान तथा हांगकांग, सिंगापुर, ताईवान तथा थाईलैंड जिन्हें विश्व का नया धन्ना सेठ कहा जाता है , ने अमेरिका और ब्रिटेन जैसे विकसित देशों के अधिकांश एशियाई बाजार में कब्जा कर लिया है । जापान एशियाई सीमा को लांघकर यूरोप और अमेरिका में ही इन देशों के कनात-तम्बू हिला रहा है । आज जापान के पास २९. ३ प्रतिशत अमेरिका का वाहन उपभोक्ता बाजार है । यूरोप में भी २५ प्रतिशत तक जापानी वाहन बिकते हैं, मगर यूरोप और अमेरिका दोनों महाशक्तियां मिलकर भी जापानी सड़कों में अपने पांच प्रतिशत वाहन नहीं चला पाते । थाईलैंड और ताईवान की धन्ना सेठी का आलम यह है कि ताईवान आज अमेरिका की सबसे बड़ी [illegible] १९८७

का सबसे बड़ा हिस्सेदार है और उसके पास आज ७६०० करोड़ अमेरिकी डालर तक की विदेशी मुद्रा का भंडारण हो गया है। यह स्थिति कोई एकाएक नहीं हुई, बल्कि पिछले दो दशकों से लगातार इसके पदचिह्न दिख रहे थे। इन्हीं परिस्थितियों का परिणाम है कि आज अमेरिका और उसके साथी मित्र देश गैट के न केवल पारम्परिक वस्तु व्यापार चार्टर को रद्द कर रहे हैं, बल्कि उसे बौद्धिक अधिकार संपदा का संरक्षक बनाने में भी तुले हैं क्योंकि आज ये देश अपने नये प्रतियोगियों के सामने ठहर नहीं पा रहे हैं और विश्व व्यापार में बिना बड़ा हिस्सा हासिल किये इनकी साख का बचना मुश्किल है। इसलिए ये देश पेटेंटों की रायल्टी की अवधि बढ़ाने तथा प्रक्रिया की जगह उत्पाद पेटेंटों को लागू करने के पीछे पड़े हैं।

इस तरह अगर गैट का उरुगुवे चक्र पूरा हुआ (जिसकी फिलहाल उम्मीद कम है) और गैट के वर्तमान प्रस्ताव को मान लिया गया, तो विश्व बाजारपर जो कि पश्चिमी देशों के हाथ से अब निकलने लगा था, एक बार फिर लम्बे समय तक इन देशों का स्वामित्व कायम हो जाएगा।

यह कैसा भारत बन रहा है ?

यह कैसा भारत बन रहा है। कहीं न कहीं एक शिकायत छिपी है इस सवाल में कि अपना यह देश, भारत नामक अपना यह देश कैसा बन रहा है ? जिस देश के पास पिछले आठ हजार साल के ज्ञात इतिहास की एक समृद्ध परंपरा रही है, सैकड़ों सालों की सतत गुलामी के बाद जो आज से ४७ साल पहले आजाद हुआ हो, वह भारत कैसा बन रहा है ? अर्थात शिकायत यह है कि क्या यह भारत वैसा बन रहा है जैसा इसे अपने इतिहास के कारण बनना चाहिए था या कि जैसा स्वतंत्रता संग्राम के महात्मा गांधी जैसे महान सत्याग्रही नायकों ने, भगत सिंह जैसे क्रांतिवीरों ने या सावरकर जैसे हिंदुत्ववादियों ने इसे बनाने का सपना देखा था.

न तो यह शिकायत नयी है और न ही शिकायत के जुमले नये हैं. पर यह भी शक नहीं कि पुराने जुमलोंवाली और पुरानी होने के बावजूद इस शिकायत के तेवर लगातार तीखे होते जा रहे हैं. देश के किसी भी कोने पर नजर दौड़ा लीजिए अगर जगह-जगह गरीबी और दरिद्रता पसरी पड़ी है तो समृद्धि के कंगूरे भी जगह-जगह और काफी बड़ी तादाद में लटकते नजर

आ रहे हैं. जब आज से ४७ साल पहले भारत आजाद हुआ था तब हर किशोर बालक की यह इच्छा होती थी कि वह साइकिल खरीद ले.

पर आज हर किशोर-किशोरी की इच्छा जल्दी से जल्दी अपनी कार खरीदने की हो रही है. तब शहरों में क्या था ? हाईस्कूल पास कर लेना एक लैंडमार्क था और दसवीं के इम्तहान का नतीजा आने से पहले ही लड़के लोग टाइप शार्टहैंड सीख लिया करते थे, ताकि एक ठीक ठाक सरकारी नौकरी उन्हें मिल जाये. पर आज टाइप की मशीनें खुद बनानेवाली कंपनियों को सस्ते दामों पर फेंकनी पड़ रही हैं, क्योंकि नौजवानों ने कंप्यूटर सीखना शुरू कर दिया है. तब भीड़ साहित्य और मानविकी पढ़नेवालों की हुआ करती थी. आज स्कूल से निकलनेवाले बच्चों का लक्ष्य विज्ञान या फिर बिजनेस एडमिनिस्ट्रेशन पढ़ना हो गया है. तब ललक रहा करती थी कि बस एक सरकारी नौकरी मिल जाये तो जिंदगी आराम और इज्जत से कट जाये.

आज प्राइवेट दफ्तरों की नौकरियों के विज्ञापन पढ़े जाते हैं और माजरा यह होता जा रहा है कि नौजवान लोग

नौकरी करना ही नहीं चाहते बल्कि अपना ही कोई धंधा खड़ा करना चाहते हैं. यह बन रहा है नया भारत और ठीक ठाक ही नहीं, बल्कि चमत्कारी भारत बन रहा है. फिर भी क्यों शिकायत भारत की नयी उभरती शक्ल को ले कर लोगों के दिलों में उठती रहती है ?

आखिर इतना विदेशी निवेश जो भारत में हो रहा है, उसके बारे में आप क्या कहना चाहेंगे ? कुछ कुशंकाओं के मन को घेरे रहने के बावजूद एक तनी हुई मुट्ठियोंवाला प्रखर आत्मविश्वास हमारे खाते में जमा हो चुका है, कि आज का भारत वह भारत नहीं जब " ईस्ट इंडिया कंपनी" नामक एक विदेशी कंपनी यहां आयी. आयी तो व्यापार करने थी, पर मालिक बन बैठी, पर आज आत्मविश्वास यह है कि आने दीजिए इन तमाम विदेशी कंपनियों को, लगाने दीजिए इन्हें अपना अकूत धन, अब कोई हमें बेवकूफ नहीं बना पायेगा, कोई विदेशी हम पर शासन नहीं कर पायेगा क्योंकि आज हम वैसे मुर्दा या सोये हुए नहीं हैं जैसे आज से चार-पांच सदी पहले थे. क्या आजाद भारत की यह नयी तस्वीर, नया मानस, अचंभा पैदा नहीं करती ?

कभी एक सरकार ही थी जिस पर सारी उम्मीदें टिक जाती थीं. सरकार से निगाह हटी तो जा कर टाटा और बिड़ला पर टिक जाया करती थीं यहां तक कि टाटा और बिड़ला कंपनियों के नाम नहीं बल्कि व्यापार के पर्यायवाची और समृद्धि की मुहावरेदार अभिव्यक्ति बन चुके थे.

पर आज तो न जाने कितने ही देशी-विदेशी कंपनियों के नाम लोगों की जुबान पर चढ़ चुके हैं, रेडियोपर आनेवाले उनके विज्ञापनों की भाषा हम लोग गुनगुनाने लगे हैं, टीवी पर उभरनेवाले इनके विज्ञापनों की तस्वीरों पर हम चर्चाएं करते रहते हैं. इस फर्क का मर्म समझते हैं आप ? यह कि पहले हमने भारत को दरिद्रता का महासागर मान रखा था जिसमें डूबते-उतरते हम अपने उद्धार के लिए किसी सरकारी जहाज या टाटा-बिड़ला नामक किसी बड़े टापू की इंतजार करते रहते थे. पर आज हमने अपने को बाजार मान लिया है और हम आत्मविश्वास की एक ऐसी धरती बन रहे हैं कि दुनिया भर को मानो चुनौतीभरा निमंत्रण दे रहे हैं कि आइए, अपना पैसा यहां लगाइए, हमें जो आप कभी लूट कर गये थे उसका निवेश इसी धरती पर कीजिए. डूब और उठान के इतने बड़े फर्क के बावजूद हमें लगता

है कि कुछ गड़बड़ है और हम पूछने लगते हैं कि कैसे बन रहे हैं हम ?

और यह सवाल, यह शिकायत इसके बावजूद है कि हमने वे अनेक सपने पूरे किये हैं या फिर करने की राह पर तेजी से बढ़े चले जा रहे हैं जो हमने आजादी की लड़ाई के दौरान तो देखे ही थे बल्कि तब से देख रहे हैं जब लोगों को नींद से जगाने के लिए कबीर अपनी चेतावनी के अलार्म बजा रहे थे और नानक देश के कोने-कोने में घूम रहे थे.

हमारा सपना था कि नारी को पुरुष के बराबर माना जाये . मान लिया गया. कानून ने मान लिया है, लोगों के दिलोदिमाग में बात क्रमशः बैठती-पैठती जा रही है. सपना था कि छुआछूत हटे. शहरों में हट गया है, गांवों से हटने की राह पर है. सपना था कि शिक्षा सिर्फ सवर्णों या कुछ खास तबकों के हाथों में कैद न रह कर करोड़ों-करोड़ों में बंट जाये. बंट गयी और बंटती ही जा रही है. सपना था कि बाल विवाह बंद हो, दहेज का खात्मा हो, विधवा से जुड़ी घृणा की धारणा ही जड़ से उखड़ जाये. कोई दावा नहीं करेगा कि सपना पूरा हो गया है, पर

此为试读,需要完整PDF请访问: www.ertongbook.com